कोस्का की राह पर

रजनीश

देश भर के वन क्षेत्रों में स्वशासन और वर्चस्व के सवाल पर वनवासियों और वन विभाग के बीच छिड़ी जंग के बीच उड़ीसा के जंगल में एक ऐसा गांव भी है, जिसने अपने हजारों हेक्टेयर जंगल को आबाद कर न सिर्फ पर्यावरण और आजीविका को नई जिंदगी दी है, बल्कि वन विभाग और तकनीकी वन वैज्ञानिकों को चुनौती देकर एक नजीर भी पेश की है।

उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर से 80 किलोमीटर दूर नयागढ़ में बसा यह गांव कोस्का अपने जंगल का खुद मालिक है। इस गांव के लोग खुद ही जंगल की सुरक्षा करते हैं और जंगल से प्राप्त होने वाली लघु वनोपज का बंटवारा भी। बीती सदी के साठ के दशक तक वन विभाग और लालची तत्वों ने यहां के जंगल को पूरी तरह बरबाद कर दिया था। यहां पीढ़ियों से बसे कंध आदिवासी, दलित समुदाय और अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों का जंगल और पानी के बिना जीना मुहाल हो गया था। तब वन क्षेत्र के मुखिया ने अपने लोगों के साथ मिलकर जंगल को आबाद करने के साथ उसकी सुरक्षा का भी बीड़ा उठाया। इस काम में आसपास के गांवों का भी सहयोग लिया गया। जंगल लगाने और इसकी सुरक्षा के लिए उन्होंने एक व्यवस्था कायम की, जिसे ठेंगापाली नाम दिया। ठेंगापाली एक ऐसी सर्पाकार लाठी है, जो आज जंगल की सुरक्षा का प्रतीक बन चुकी है। जंगल की सुरक्षा की जिम्मेदारी के लिए यह लाठी बारी-बारी से घरों की दहलीज पर रख दी जाती है।

बीच बहस में

वर्ष 1970 में करीब एक हजार हेक्टेयर वनक्षेत्र में यह शुरुआत की गई। कुछ ही वर्षों में जंगल फिर से आबाद होने लगा। इसके बाद समिति द्वारा तय कायदे के मुताबिक, वर्ष में तीन बार जरूरत के हिसाब से गांव के सभी परिवारों को बांस, हल बनाने और जलावन के लिए लकड़ी तथा महुआ जैसी लघु वनोपज उपलब्ध कराई जाती रही। इसके बावजूद बिना जरूरत के लकड़ी काटने पर प्रतिबंध लगा रहा।

मगर कोस्का व हाथीमुंडा जैसे इक्का-दुक्का गांव ही इस व्यवस्था के तहत हैं। आसपास के गांवों की जरूरत भी इसी वन क्षेत्र से पूरी होती है, हालांकि उसके एवज में उनसे शुल्क लिया जाता है, जो जंगल सुरक्षा समिति के कोष में जमा हो जाता है। दरअसल पास के गांवों से यहां पैदा होनेवाले महुआ के फूलों की ज्यादा मांग आती है, जिससे वे खाद्य तेल निकालते हैं। कायदा तोड़ने पर दंड का भी प्रावधान रखा गया है, जिसमें नगद रुपये से लेकर गांव निकाला तक शामिल है, हालांकि किसी भी तरह का शारीरिक उत्पीड़न नहीं किया जाता। पूर्व में बसे 51 परिवारों की संख्या अब बढ़कर करीब 80 हो गई है।

वनाधिकार कानून लागू होने के बाद कोस्का में भी इसकी पहल की गई। लेकिन कोस्का के लोगों ने सरकारी तरीके से कानून लागू करने की प्रक्रिया को ठेंगा दिखा दिया। इस पर स्थानीय वन विभाग और प्रशासन इन्हें 75 वर्षों के निवास प्रमाण की अनिवार्यता के मकड़जाल में फंसाकर इनके अधिकारों की राह में रोड़े अटकाने लगा।

यह बात तो बिलकुल साफ है कि कोस्का में वनाधिकार कानून लागू करने के लिए सरकार को ही यहां के ग्रामीणों से प्रशिक्षण लेना चाहिए, क्योंकि कोस्का यह संदेश दे रहा है कि अगर वनाधिकार कानून को वास्तविक रूप में लागू कराना है, तो पहल वनवासियों को ही करनी होगी। लेकिन वन विभाग इसे नहीं मानता। उसे शायद यह भी पता नहीं कि कोस्का की वन व्यवस्था को राज्य सरकार पुरस्कृत कर चुकी है और फॉरेस्टरी की पाठ्य-पुस्तकों में ठेंगापाली वनरक्षा पद्धति के बारे में पढ़ाया जा रहा है। विदेशों में भी इस प्रणाली को एक सीख के रूप में लेते हुए अपनाया गया है।

पूरे देश में वनाधिकार कानून दरअसल वहीं पर लागू हो पा रहा है, जहां स्थानीय लोग पहल कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद में वन समुदायों द्वारा महिलाओं की अगुवाई में अपनी छिनी हुई करीब 20,000 एकड़ जमीन पर कानून आने से पहले ही दोबारा दखल को भी एक ऐसी ही मिसाल के रूप में देखा जा सकता है। अगर केंद्र व राज्य सरकारें वास्तव में वनवासियों के साथ हुए अन्यायों के प्रायश्चित के रूप में वनाधिकार कानून को देश भर के वन क्षेत्रों में लागू करना चाहती हैं, तो उन्हें उड़ीसा के इस छोटे से गांव से बड़ी सीख लेनी होगी।